मिट्टी का राज़

ईशा सरदेसाई द्वारा पुनर्लिखित

यात्री ने एक गहरी साँस ली और उसकी नाक में मनमोहक सुगन्ध भर गई। आऽ ऽ ऽ . . . कहते हुए उसने साँस बाहर छोड़ी। वहाँ पहुँचकर उसने सुकून की साँस ली। वह पहाड़ियों के बीच में खड़ी थी। गीली मिट्टी और पहाड़ों के टूटने व पानी के साथ नीचे बहकर आने वाली तलछट से बनी ये पहाड़ियाँ चटक धारीदार दिखाई दे रही थीं। उनकी सतह पर लालिमा लिए हुए गहरे भूरे रंग, काई हरे और आश्चर्यचकित करने वाले पीले रंग की धारियाँ थीं।

यहाँ मौसम ज़्यादातर गरम रहता था और हवा में नमी भी कम थी, पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि यहाँ हरियाली थी ही नहीं, कई भाग हरे-भरे थे और कहीं-कहीं तो फूलों की झाड़ियाँ भी थीं। वह महिला सब कुछ बड़े विस्मय से देख रही थी। घर से दूर इस बियाबान की सुन्दरता, अपने में अनूठी और असाधारण थी। वह यहाँ से कुछ ले जाना चाहती थी जिससे वह इस जगह को याद रख सके— ऐसा कुछ जो उसकी यात्रा के दौरान, सड़कों के किनारे सजी उन दुकानों पर बिकने वाली चीज़ों से बढ़कर हो, जहाँ से होकर वह अभी गुज़री थी। उसे कुछ ऐसा चाहिए था जो उसे इस *जगह* की याद दिलाए।

महिला के मन में यह ख़याल आया ही था, कि उसकी नज़र नीचे गई —ज़मीन पर पड़ी मिट्टी की ओर, और ख़ासकर मिट्टी के एक ढेले पर।

वह गोल्फ़ खेलने वाली गेंद से थोड़ा-सा बड़ा था और लगभग गोल था। उसका रंग वैसा ही लाल और भूरा था जैसे किसी ज़ंग लगी चीज़ का हो जाता है। और यही रंग उसके आस-पास की पहाड़ियों का भी था। उस ढेले की सतह पर, पूरी गोलाई में खिंची एक पतली पीली धारी भी थी। उस ढेले को देखकर उसे अचानक अपने बचपन में खेले कंचों की याद आ गई।

मिट्टी के ढेले को उठाने के लिए वह झुकी ही थी कि उसके मुँह से अनायास ही निकल गया, “वाह, तुम कितने ख़ूबसूरत हो!”

उसने अपनी जेब में से एक रुमाल निकाला और सावधानी से उस ढेले को रुमाल में लपेट लिया। वह खुशी-खुशी कहने लगी, “मैं जिस कमरे में सोती हूँ, तुम्हें उसी कमरे में रखूँगी ताकि मुझे हर रोज़ इस जगह की याद आती रहे जिसने मुझे इस बात की कई झलकियाँ दिखाई हैं कि मैं कौन हूँ।”

एक सप्ताह बाद, वह महिला घर लौटी और उसने ठीक वैसा ही किया जैसा उसने सोचा था। जिस कमरे में वह सोया करती थी, वहाँ रखी एक बड़ी-सी अलमारी पर उसने मिट्टी के उस ढेले को सजा दिया। इस अलमारी पर वह सारे सामान सजे हुए थे जो वह अपनी अन्य यात्राओं से लाई थी। जगह कम थी [उसे घूमने का शौक़ *था*], इसलिए उसने मिट्टी के उस ढेले को बाँस के पंखे और हरे रंग के किसी तरल पदार्थ वाली शीशी के बीच जैसे-तैसे घुसाकर रख दिया, और आख़िरकर वह ढेला वहाँ सज ही गया।

अगले कुछ दिनों तक वह महिला व्यस्त रही। यात्रा से लौटने के बाद उसे बहुत-से काम निपटाने थे; बाज़ार से सामान लाना था, दोस्तों व रिश्तेदारों से मिलना था और घर की मरम्मत करानी थी। फिर भी, हर बार जब वह अपने सोने वाले कमरे में आती तो उसे सुकून मिलता। वह चैन की साँस लेती। वह नहीं जानती थी कि क्या यह उसकी कल्पना मात्र है या कुछ और, पर इतना तो तय था कि इस कमरे की महक कुछ अलग ही थी, भीनी-भीनी, सौंधी-सौंधी!

कुछ दिन और बीत गए, और महिला को यह यक़ीन होता गया कि यह केवल उसकी कल्पना *नहीं* है। हवा में *निःसन्देह* एक ख़ुश्बू थी जो उसे मन्त्रमुग्ध कर रही थी। वह फूलों की और गीली लकड़ियों की जानी-पहचानी-सी ख़ुश्बू थी, जो तुरन्त उसके मन में किसी रहस्यमय, दूर-देश की याद ताज़ा कर रही थी। *क्या है यह ख़ुश्बू और यह आ कहाँ से रही है?* जल्द ही, यह तेज़, रहस्यमय सुगन्ध उसके पूरे घर में भर गई।

आख़िर यह ख़ुश्बू आ कहाँ से रही है, यह जानने के लिए उस महिला ने अपने घर में खोजना शुरू किया। उसने अपना ध्यान सोने वाले कमरे पर केन्द्रित किया, जहाँ उसे सबसे पहले यह ख़ुश्बू महसूस हुई थी। उसने झुककर अपने पलंग के नीचे देखा। वहाँ तो कुछ भी नहीं था, परन्तु जब गन्ध को सूँघते-सूँघते उसने अपना सिर उठाया तब वह इतनी तेज़ी-से उठी कि वह गिरते-गिरते बची।

जल्दी-से सँभलते हुए वह सुगन्ध की दिशा में आगे बढ़ी। ऐसा लग रहा था कि वह सुगन्ध कमरे के उसी कोने से आ रही है, जहाँ दराज़ों वाली अलमारी रखी थी।

“अरे हाँ” उसने सोचा, “मैं अपनी यात्राओं से कितने सारे नायाब इत्र और ख़ुश्बूदार तेल लाई हूँ। ज़रूर, उन्हीं में से किसी एक का ढक्कन खुला रह गया होगा।”

उसने अलमारी पर सजा हुआ सामान देखा, उसकी यादगार चीज़ों का ख़ज़ाना। यहाँ छोटी-बड़ी सभी आकार की शीशियाँ और डिब्बे थे—नज़दीक से देखने पर पता चला कि उनके ढक्कन काँच के मुँह पर ठीक तरह से बैठे थे और वे सब कसकर बन्द थे।

तो फिर वह *ख़ुश्बू!* यहाँ इसकी गन्ध और भी तेज़ होती जा रही थी, बिलकुल मन्त्रमुग्ध कर देने वाली। महिला को पूरा यक़ीन था कि उसकी खोज पूरी होने ही वाली है।

उसकी आँखें इधर-उधर खोजने लगीं और तभी उसकी नज़र गई : उस मिट्टी के ढेले पर जो चुपचाप, मासूम बना अलमारी के पिछले भाग में बैठा था। बल्ब की हल्की रोशनी में, उस पर बनी पीली धारी जैसे चमचमा रही थी।

उसने धीमी आवाज़ में मिट्टी से पूछा, "क्या वह तुम हो? इतनी अच्छी ख़ुश्बू क्या तुमसे आ रही है?"

उसने अपने दोनों हाथों में मिट्टी का ढेला उठा लिया और तुरन्त ही उसे जवाब मिल गया। ख़ुश्बू उसी में से सब ओर फैल रही थी। विदेश में उसने जो महँगे से महँगे इत्र देखे थे, उनसे भी बेहतरीन सुगन्ध! ख़ुश्बू ऐसी मानो आप फूलों से खिले बगीचे में हों, जहाँ मख़मली, लाल पँखुड़ियों वाले फूल हों और उन पर लिपटी हरी बेल और कुछ नवाबी, शाही चीज़ें जैसे अगर की लकड़ी। वह महिला कुछ क्षण अपनी आँखें बन्द किए वहीं खड़ी रही और उस ख़ुश्बू ने उसे अपने में समेट लिया।

कुछ देर बाद, उसके दिमाग़ ने काम करना शुरू किया। *क्या यह ख़ुश्बू मिट्टी से आ रही है? यह कैसे हो सकता है?*

वह मिट्टी के ढेले को ध्यान से देखने लगी। उसे देखकर तो कोई ऐसा सोच भी नहीं सकता था।

"तुम क्या हो?" वह बुदबुदाई। "क्या तुम कोई छिपा हुआ ख़ज़ाना हो? आसमान से उतरा एक नायाब तोहफ़ा? या क्या तुम्हारे अन्दर मधुर सुगन्ध वाली जड़ी-बूटियाँ भरी गई हैं। मुझे जानना ही होगा कि तुम कौन हो। मुझे जानना ही होगा कि तुम क्या हो।"

तभी मिट्टी बोल उठी।

उसने कहा, "मैं? मैं तो बस एक मिट्टी का ढेला हूँ।"

"नहीं, नहीं," महिला नहीं मानी। "ऐसा हो ही नहीं सकता। तुम इतनी ख़ुश्बूदार हो। मुझे भी बताओ यह सुगन्ध आ कहाँ से रही है।"

मिट्टी फिर बोली—या शायद यह उस महिला की अपनी समझ थी जो उसके ही अन्दर से उभर रही थी, और इस समझ में घुली थीं, धारीदार पहाड़ियों और वहाँ उगने वाले फूलों की झाड़ियों की यादें।

“अच्छा तो सुनो, मेरी दोस्त, मैं तुम्हें अपना राज़ बताती हूँ। हूँ तो मैं मिट्टी का एक ढेला ही, पर जब मैं रेगिस्तान में थी तब रहती थी गुलाबों की संगति में।”

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

यह कहानी गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा उनकी शिक्षण यात्राओं के दौरान हुए सत्संगों में सुनाई गई कहानी का पुनर्लेखन है। इसका मूल स्रोत तेरहवीं शताब्दी की एक पारसी कविता है।